

DHANUSH-YAGYA : BY PRAKASH DWIVEDI
MANORAMA PRAKASHAN, SAHITYA-SADAN,
SETHWA, MALIPUR, FAIZABAD (U. P.)

Price : Rs 21/-

धनुष-यज्ञ
प्रकाश द्विवेदी

मूल्य : इक्कीस रुपये

संस्करण : प्रथम, १९६१

सर्वाधिकार कवि-अधीन

प्रकाशक

मनोरमा प्रकाशन
साहित्य-सदन, सेठवा
मालीपुर, फैजाबाद
(उत्तर प्रदेश)

मुद्रक :

श्री सुरेन्द्रमणि त्रिपाठी
एकेडमी प्रेस, ११, १२,
दारागंज, इलाहाबाद

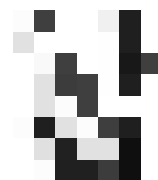


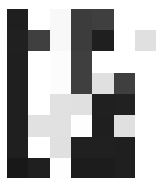
समर्पण

हिन्दी-भारती के विविध पक्षों के व्रती और साधक,
सौजन्यशील डॉक्टर महेशप्रतापनारायण अवस्थी जी
के प्रति निवेदन-वचन



भारतीय भावना के भावुक मनीषी आप,
प्रभु गुण-गान की सलोनी सुधा पीजिए
लोकहितकारी, कथाकार अबधी के बड़े,
खड़ी बोली के सुकवि और ग्रंथ दीजिए
सींच सींच के बढ़ाया कितने नवांकुरों को,
आभामय औरों का भविष्य और कीजिए
मानस की भाव-भूमि से जगा 'धनुष-यज्ञ',
सादर समर्पित करांबुजों में लीजिए





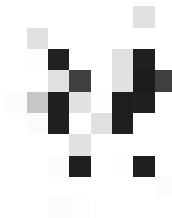
भूमिका

‘धनुष-यज्ञ’ भाव-भूमि से ‘मानस’ और छंद-दृष्टि से रीति-शिल्पी देव, मतिराम और पद्माकर की शैली का कथा-काव्य है। यह काव्य अनुदर्शन, पुष्प-चयन, अंतर्दर्शन, धनुष-यज्ञ और धनुष-भंग पाँच पड़ावों में बँटा है। इसमें मंगलाचरण और सरस्वती-स्तवन के अतिरिक्त १११ छंद हैं, जिनमें ६ रूप घनाक्षरी १०२ मनहरन छंद हैं।

‘धनुष-यज्ञ’ आध्यात्मिकी आधार-भूमि पर रचा गया है। पुष्प-वाटिका के इस मधुर स्पर्श संदर्भ का उत्स ‘रास पञ्चाध्यायी’ एवम् ‘प्रसन्न राघव’ से गृहीत जान पड़ता है। शरदोत्फुल्ल मल्लिका वाली महकती शारदीया शर्वरी का ‘तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं...’ और ‘दृष्ट्वा कुमुदवंतमखंड मंडलम्...’ याद आ रहा है। जो हो, मर्यादा की मधुमती भूमिका के कथा-सूत्र में, इस प्रसंग को जोड़ने की मौलिकता गोस्वामी जी की बड़ी मनोहारिणी है।

‘धनुष-यज्ञ’ शृंगार की भूमिका में आध्यात्मिक प्रतीकों द्वारा रचा गया है। शिव-धनुष अहंकार, बुद्धि ब्रह्मा, मन चन्द्रमा, चित् महत एवम् सीता शक्ति-भक्ति का प्रतीक है—‘अहंकार शिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान्’... (तुलसी) ‘धनुष-यज्ञ’ में ‘मानस’ के भावों की रक्षा हुई है। मानसकार की मर्यादा और प्रिय ‘प्रकाश’ की अभिव्यक्ति-भंगिमा इस काव्य में आकाश-गंगा की भाँति चंद्रमालिनी निशा की मुसकान-सी जान पड़ रही है। वृन्दावन के भुरमुट-से निकलती विहँसती चित्तावलियाँ प्राणों को रस-सिक्त करती रहती हैं।

लता-वल्लियों से लिपटे विटप, कल-पल्लवों में मुसकुराते कुसुम, काकली करते कोकिल, सुर-तर को लजाते, भूप-बाग में भाँवरी देते

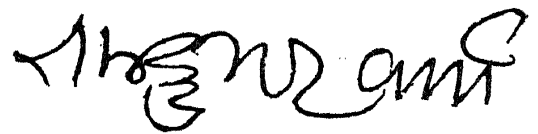


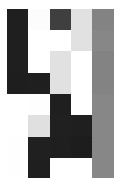
भौरे हैं, उनकी गूँज से पुष्प-चयन का प्रारंभ कर कवि ने अपने प्रकृति प्रेम का परिचय दिया है। 'धनुष-यज्ञ' में जहाँ पपीहे की 'पी कहाँ ? कीर-कुल के कलरव, विविध विहंगों के सुधा घोले बोल, दर्शकों के दृश्यों के सात्विक भावों के मानसर हैं, वहीं वनस्थली में नाचते मयूर और मधु मकरंद की कणिकाओं से स्वागत करते हुए, पुष्प-चयन क चित्र-बन्ध भी दिया गया है।

मानस की मर्यादा-भूमि का सर्वत्र शोभन त्राण हुआ है। जो नई उद्भावनाएँ आई हैं, वे कवि के कवित्व का रेखांकन करती हैं। जहाँ गोस्वामी जी ने 'खसी माल मूरति मुसकानी' द्वारा पार्वती के मुसकुराने की बात कही है, वहीं 'प्रकाश' ने पार्वती-द्वारा शिव के प्रति प्रेम तथा सीता-द्वारा राम के प्रति प्रेम का सादृश्य दिखाया है, यह उसकी मौलिक उद्भावना है। इसी प्रकार 'धनुष-यज्ञ' में कितने ही मोहक अन्तर्गर्भ प्रसंग भरे पड़े हैं, जिनमें कवि की 'सहजा' की तरंगें मन को छू-छू कर, उसकी सहजता और सहृदयता को प्रकट करती रहती हैं।

दांपत्य-आदर्श, उद्देश्य और सफलता को कवि एक ही पंक्ति में अभिव्यक्त कर देता है। इस प्रकार सूक्ष्म भावों की सशक्त अभिव्यक्तियाँ काव्य का अलंकरण कर रही हैं। कवि आज हिन्दी-भारती को 'धनुष-यज्ञ' सौंप रहा है, कल वह कोई विशद प्रबन्ध-काव्य माँ भारती को भेंट करेगा। कवि के प्रति मेरी अनेक मंगल-कामनाएँ हैं।

साकेत, इलाहाबाद
८ अगस्त, १९६० ई०





1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

रचना-दृष्टि

‘धनुष-यज्ञ’ रामायण का आधार-आलोक-स्तम्भ है। यही जनक के ब्रह्म-साक्षात्कार का निमित्त है। सीता-अवतरण की गाथा और उसी के माध्यम से विराट् ब्रह्म के प्रादुर्भूत होने की कथा तथा उसी से लिपटी राम-कथा की सारी सूत्र-संयोजना का यही उद्गम है। इसे केन्द्र मान कर सारी राम-कथा घूमती है। इसलिए इसे रामायण का मूलाधार कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं।

‘धनुष-यज्ञ’ का कथा-सूत्र ‘मानस’ के साथ चलता है। जहाँ-तहाँ घटाव-वढ़ाव और परिवर्तन-प्रस्फुटन है, परन्तु वह कथा-सूत्र में कहीं रोड़ा नहीं बनता।

‘मानस’ का यह सन्दर्भ मुझे बड़ा प्रिय रहा है। अस्तु, जो दोहे या चौपाइयाँ मेरे मनःप्राण में रमी हैं, उनकी भाव-छाया इसमें सहज उतर आई है। कहीं-कहीं छायानुवाद का भी लोभ मैं संवरण नहीं कर सका। इसमें यह दृष्टि भी रही कि ‘मानस’ का जितना भी पूज्य भाव लोक के सम्मुख आ जाय, अच्छा है।

‘धनुष-यज्ञ’ पाँच सर्गों में बँटा है। ‘नाथ लखन पुर देखन चहहीं’ से ‘गोतम तिय गति सुरति करि, नहि परसत पद पानि...’ की कथा में, अपने ढंग से, पाँच पड़ाव मैंने दिये हैं, वे ही अनुदर्शन, पुष्प-चयन, अन्तर्दर्शन, धनुष-यज्ञ और धनुष-भंग की संज्ञा से अभिहित होकर ‘धनुष-यज्ञ’ बन गये हैं।

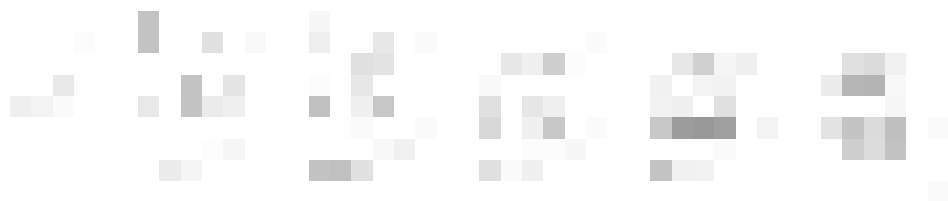
‘धनुष-यज्ञ’ का मर्मस्पर्शी प्रसंग जहाँ लोक-हृदय को आल्लादित और उद्वेलित करे, उसका सारा श्रेय मानसकार को है, और जहाँ कोई त्रुटि दिखे, वहाँ के लिए मेरी दुर्बलता हाथ जोड़े खड़ी है।



अपनी अक्षमता के बावजूद, 'घी का लड्डू टेढ़ा भला' के अनुसार,
निष्ठा के साथ, इस सन्दर्भ पर, संकोच के साथ लेखनी का यह नैवेद्य
माँ वाणी की पूजा के फूल के रूप में, निवेदित करता हूँ।

वसन्त-पंचमी, १९६०
मनोरमा-प्रकाश-निकेतन
साहित्य-सदन, सेठवा
मालीपुर, फैजाबाद (उ० प्र०)

Manorima



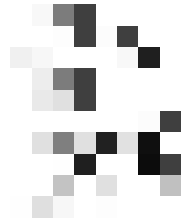
?

होता न धनुष-यज्ञ, मिथिला में जो 'प्रकाश'
होता न धरा में ब्रह्म-शोध का कभी तो काम
होता दर्प वीरों का न, एक साथ चूर्ण कभी,
होता न मुनीन्द्र संत, सज्जनों का ऋक् साम
झूमते जनक ब्रह्म साधना में जो सदैव,
उन्हें कहो, कैसे मिल जाते कहाँ प्रभु राम
सारा स्वप्न भक्तों का, धरा ही रह जाता वह,
होता न सु युक्त स्वर्ग, का स्वरूप धरा-धाम



अम्ब वीणापाणि ! मधुहास काव्य-नन्दन में,
स्नेह संग दे दे, रसनाग्र पर मुक्त लास
लिखने चला हूँ अम्ब, आज मैं 'धनुष-यज्ञ'
यज्ञ की पवित्रता का, संचित विशुभ्र हास
मंजु मिथिला का, मिथिलेश, मैथिली का चारु
चित्र है सँवारना, दे तूलिका में रंग-रास
अर्चना के फूल का, स्वरूप यह काव्य पाये,
वर्ण वर्ण में सु वर्णता का लाये मधुमास







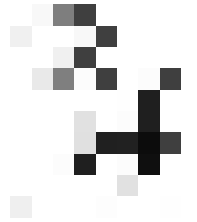
अनुदर्शन

१

नाथ ! चाहते लखन, देखना जनकपुर,
मन में सँकोच भरा, और भय भारी है
हो निदेश आपका जो, दिखला उन्हें मैं शीघ्र,
लौटा लाऊँ, पद-कमलों में प्रीति प्यारी है
बालक हैं देखने की, लालसा है मन-बीच,
बसी मनोरंजनों की, भीड़ लिये क्यारी है
सावधानी मैं रखूँगा पूरी, होगी देर नहीं,
दास चाहता ये, अनुमति की उज्यारी है

२

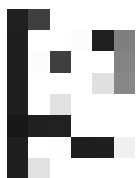
सुन बात ऋषि के, झूगों में नेह नीर आया,
सहज गँभीरता से, मन मुसकाया है
जीवन सफल माना, बातों में सहज भाव—
भरा अपनत्व का, तरल ढंग लाया है
जप, तप, संयम, नियम धन्य माना सब,
भक्ति-गंग का तरंग, तुंग लहराया है
ऐसा क्यों कहो न राम, कह के निदेश दिया,
उसमें प्रशस्त ज्ञान-ध्वज फहराया है



मुनि-वेश राम औ, लखन का सजीला बड़ा,
 पीत वसनों की छवि, अति ही निराली है
 भाथा कटि देश, परिकर सोहे, मुखचंद्र,
 हाथों ने धनुष-बाण, सुषमा सँभाली है
 कानों में कनक-फूल, उर नाग मनि-माल,
 भाल में तिलक-रेख, की भली प्रभाली है
 बाल घुँघराले, जटा-जूट में, सुहाने बने,
 वृष-कंध, नाच रही, लोचनों में लाली है

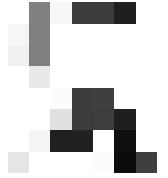
४

छूकर चरण गुरुदेव, के चले समोद,
 मन में उमंग, तन में तरंग न्यारी है
 नया पुर देखने का, मन में नया था रंग,
 अंग अंग में हुलास, की उमंग प्यारी है
 कैसा है विदेह का, सुयोग और भोग भला,
 कैसी कुल-रीति औ' परम्परा-उज्यारी है
 कैसा है नगर, हैं नगर-लोक कैसे भले,
 कैसी छवि छापी, कैसी केसर की क्यारी है



पुरवासियों को पता, चला गणों आदि ही से—
 देखने नगर, भूप-सुत यहाँ आये हैं
 धाम धाम से चले, 'प्रकाश' काम छोड़ छोड़,
 नारी-नर सबने असंख्य सुख पाये हैं
 देखा जो नगर-वासियों ने, शोभा-सिन्धु को त्यों—
 हो गये विभोर, वे ही दृगों में समाये हैं
 ऐसा रूप लोचनों को, देखने को कहाँ मिला,
 राम औ लखन ही, दृगों में बस छाये हैं

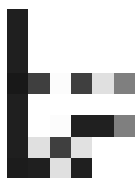
राहों पर, अगल-बगल, देख चुकी जो थीं,
 उनको अनूप, दूसरा न रूप प्यारा था
 लाज में भरी जो कुल-ललना अटारियों पै,
 उनके मनों में कुछ, रंग और न्यारा था
 साज सजी, झाँकती झरोखों से वे प्यासी बनीं
 उनके दृगों के लिए, बना जो सहारा था
 रह जातीं एकटक, देखतीं चकोर-तुल्य,
 रामचन्द्र को दृगों में, सबने उतारा था



एक दूसरे से कहती थीं, मिथिलापुरी की
 नारियाँ—न देखा कभी ऐसा रूप, आली है
 जान पड़ता है कि, विरंचि ने निकाई सब,
 करके इकट्ठा रची, देह ये निराली है
 अंग अंग इनके, अनुपमेय सजे लगें,
 दीखती कहीं न सखि ! ऐसी ये प्रभाली है
 फीका लगता शरत-चन्द्र मुख आगे, सखि !
 गयी किस साँचे में, शरीर-यष्टि ढाली है

८

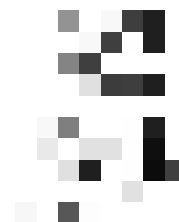
विधि वसुधा के सिरजनहार सही, किन्तु
 चार मुख वाली बात, गजब उठाती है
 विष्णु भगवान रूपवान, छविमान किन्तु
 चार हैं भुजाएँ, जो न सहज दिखाती हैं
 कर्पूर गौर शिव हैं महान, किन्तु पाँच—
 मुख वाली बात विधि-सृष्टि को चिढ़ाती है
 सहज सु रूप अद्वितीय, प्रभु राम का है,
 समता किसी से, उनकी न बन पाती है



इनकी सु रूप-समता में, विश्व-बीच हमें,
 सही सखि मानो, कहीं कोई न दिखाता है
 सुर-लोक, नर-लोक और नाग-लोक में भी,
 मन उनके समान, किसी को न पाता है
 यहीं दमयन्ती के लिए थे, आये देव सभी—
 इन्द्र भी लजाये, नल का महत्व आता है
 सखि ! नल आदि, किस कोटि में यहाँ हैं, कहो ?
 भव्य रूप राम का, दृगों में बसा जाता है

१०

मेरा मन कहता—भला तो है, यही ही सखि !
 प्रन छोड़ नृप, इनसे विवाह कर दें
 सीता जैसी बेटी के, लिए यही है वर योग्य,
 सोने की अँगूठी में, नगीना यह धर दें
 एक दूसरे के योग्य, सुन्दर सहज दोनों,
 जोड़ी दोनों की सँवार, आशिष अमर दें
 दोनों एक होके, विश्व को विभूति नित्य देके,
 भूति से वसुंधरा को, झूम झूम भर दें



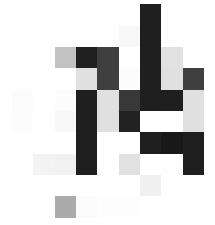
सोनजुही को मिलेगा, प्यारा-न्यारा ये तमाल,
 दामिनी को मेघ का, सहारा मिल जाएगा
 प्रकृति-पुरुष दोनों, प्रेम से मिलेंगे साथ,
 दोनों का ही उर-कंज, आप खिल जाएगा
 मिथिला-अवध का, मिलापालाप होगा प्यारा,
 दिल सभी का तो खिल, तिल तिल जाएगा
 राग-रंगिमा से होंगे, जननी-जनक मुग्ध,
 हम सबका न कहीं, और दिल जाएगा

मिथिलापुरी के पूर्व, दिशि गये दोनों भाई,
 जहाँ भूमि धनु-यज्ञ, की गयी बनायी थी
 अति ही विशाल, रचना 'प्रकाश' मूर्तिमती,
 स्वर्णाभि फर्श गयी, मणिमयी बनायी थी
 वेदिका विमल शोभा, दे रही अनोखी वहाँ
 भव्य पार्श्व-पीठिका, गयी नयी बनायी थी
 परम विशाल कल, कंचन के मंच बने,
 बैठे भूमिपाल, सुषमा-चयी बनायी थी



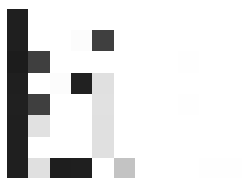
चारों ओर इसके, अपर मंडली थी बैठी,
 सुषणा का क्षीर-सिन्धु, जैसे लहराता था
 उसके अनन्तर थी, कुछ ऊँची भूमि जहाँ,
 खड़ा हो नगर-ध्वज, मुक्त फहराता था
 सुन्दर सजीला, जन-मंडल था बैठा हुआ,
 परम गम्भीरता का, रंग छहराता था
 उसके निकट थे, धवल-धाम शोभा-धाम,
 ध्वज तोरणों से भव्य, भाव गहराता था

बैठे थे वहाँ पै, अनुराग में महीप डूबे,
 जिनके स्वरूप, और वेश अलबेले थे
 उसके निकट ही, विभूषित विभूषणों से,
 चारु चन्द्रमुखी, नारियों के लगे मेले थे
 पुर के 'प्रकाश' थे, बताते बालवृन्द मुग्ध
 प्रभु की, रुचिर रचना के चारु केले थे
 अपने मतोरथों के, विपुल विचित्र चित्र,
 बालकों ने राम के ही, लोचनों में खेले थे



बातें सुन बालकों की, राम का हृदय खिला,
 जाने कैसे, अपनेपने के भाव आये थे
 ध्यान देके बातें सुनीं, मन में अपार स्नेह,
 बड़े राग-रंग के, सु मेघ घने छाये थे
 देके मान राम ने, दिखाया बालकों में राग,
 उनके दृगों में, नेह-मेंह मँडराये थे
 लखन की बातों ने, प्रसंग छेड़ छेड़ नव,
 स्वल्प ही समय में, मोद-वारि बरसाये थे

लख लख लखन को, राम को निहार, हार
 बालगन विहँस ज्यों, फूल बरसाते थे
 एक दूसरे का दल, भूलता उन्हें न पल,
 हुए जो अलग तो, विकल दिखलाते थे
 सब चाहते थे, प्रेम-रज्जु में बँधे जो प्राण,
 बँधे ही रहें वे, भाव-चाव दरसाते थे
 विषम बयार जो विरुद्ध कहीं जान पड़ी,
 सानुकूल कर, उसको वे हर्षति थे



पुष्प-चयन

१

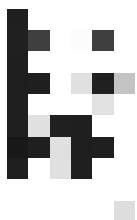
भूप-बाग सुन्दर, सुहावना सलोना सजा,
सुषमा विलोक के, वसंत लजा जाता था
विटप अनेक, लतिकाएँ लिपटी हुई थीं,
वेलियों का विविध, वितान सजा जाता था
नूतन सुघर कल, पल्लव सुमन सोहें,
कोकिल विजय-वाद्य, जैसे बजा जाता था
पारिजात के प्रलुब्ध, चंचरीक-वृन्द-द्वारा,
दूसरे प्रसूनों का, मरंद तजा, जाता था

२

पावन पपीहा, बोलता था—पी कहाँ ? 'प्रकाश'
कोकिल दिशा दिशा में, कूज भर देता था
कमनीय कीर-कुल, का कलित कलरव,
चख का चकोर उत, पल धर देता था
विविध विहंग बोल बोल में, सुधा का घोल,
दर्शक-दृगों को, मानसर कर देता था
नाचते मयूर घूम, घूम के वनस्थली में,
कण कण रूपराशि का ही वर देता था

ऐसे मनोमोहक, सुबाग-बीच था 'प्रकाश'
 सुन्दर सलोना सर, नित्य छवि छाता था
 सीढ़ियाँ बनी थीं, मणियों से मूल्यवती महा,
 विविध विधान से, बना हुआ सुहाता था
 क्षीर-सा सलिल, थे कमल रंग रंग के यों,
 देख कर जिन्हें मन, मुग्ध हुआ जाता था
 जल के विहँग थे, विविध कूजते सदैव,
 गुँज भ्रमरों का, मधुकण बरसाता था

चारों ओर देख और पूछ कर मालियों से,
 बाग में प्रवेश ज्यों किया, प्रसन्न हो गये
 आगे राम, लखन बड़े थे, एक मालिनी ने
 टोका सही उन्हें पर, क्या विपन्न हो गये ?
 देख के प्रसन्न, मंद हास लेके मालिनी ने
 कहा—कैसे आये ? कैसे अवसन्न हो गये ?
 जानते न बाग, मिथिलेश नंदिनी का यह,
 कैसे आ गये यहाँ ? क्यों यों विषण्ण हो गये ?



बात है न ठीक, सचमुच यहाँ नारियाँ हैं,
 दीख रहा उन्हीं का, अखंड बोलवाला है
 आना था यहाँ न हमें, कैसे चले आये यहाँ ?
 लगता अदृष्ट का, विधान ही निराला है
 आना यहाँ पूजा-फूल, के लिए हुआ है बस,
 दुष्ट भाव से न मन मेरा मतवाला है
 किन्तु फिर भी प्रवेश, कर वाटिका में आज,
 सचमुच मैंने, अपराध कर डाला है

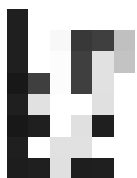
मालिनी ! न जानता था, यह है जनाना बाग,
 मैं तो मालियों से, पूछ कर यहाँ आया हूँ
 पूछो तुम्हीं मालियों से, क्यों है अनुमति दी यों,
 मैं तो न्याय के सहारे, पर यहाँ आया हूँ
 मानना बुरा न, मैं तो पुष्प चाहता हूँ मात्र,
 होके इस कारण, निडर यहाँ आया हूँ
 वासी हूँ सु दूर का, यहाँ का तो अतिथि हूँ मैं,
 देखने अलौकिक, नगर यहाँ आया हूँ



रूप-सुधा पीकर, अघा रही न मालिनी थी,
 उसे बात-चीत का ही, केवल सहारा था
 लोनी छविराशि, लोचनों से न उतर पाती,
 देख देख उसका, थका शरीर सारा था
 बातें सुन राम की, अनूठी सब जूठी लगे,
 झूठी संपदा थी मन, उसका ज्यों हारा था
 एक एक बात पर, उसने विनम्रता से,
 पुलक-पुलक के, निजत्व निज वारा था

८

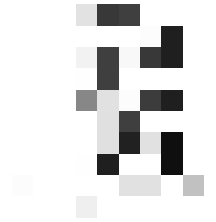
मन में कुतूहल का, उसके मचा था द्वन्द्व,
 ऐसी मनोहारिणी न, छवि दिख पायी है
 देखे नर कितने, न मन का यों हाल हुआ,
 कैसी रूपराशि ये, अनोखी मनभायी है
 रोकें कैसे इन्हें वे, बिचारे मालियों के दल,
 उनके उरों में क्या न, छवि ये समायी है
 हाल मेरे मन का, हुआ है जैसे वैसे ही तो,
 सब के मनों में भी, उमंग-सरि आयी है



पाके अनुकूलता यों, मालिनी की आगे बढ़,
 दोनों भाई लेने लगे, फूल हो मुदित मन
 भाँति-भाँति के सुमन, रंग-गंध में भरे वे,
 तोड़-तोड़ वृंत से, सजा रहे सुमन-धन
 लोनी लोनी लहर-भरी थीं वे लताएँ झुकी,
 झुके झुके राम और, लखन लला के तन
 शोभा-सर में नहाये, बंधुओं को देख मानो,
 धन्य हो रहा था, मालिनी का एक एक छन

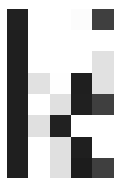
१०

उसी अवसर पर, सीता वहाँ आग्री मंद,
 मंद गति से, गयंद-गति जैसे वारती
 सखियाँ सलोनी साथ साथ, चलीं दायें-बायें,
 प्राणपन से सुमन, भाव में सँवारती
 अपने पने की बात, बीच बीच होती हुई
 सजी सुषमा की जैसे, आरती उतारती
 ज्योति की शिखा-सी, जानकी की रूपराशि रम्य,
 दर्शकों की मुग्ध भीड़, रह गयी निहारती



गिरिजा के पूजन के, लिए जननी ने भेजा,
 मन में आराधना का, भाव ही निराला था
 सर के समीप ही, सुचारु एक मंदिर था,
 मणियों का जिससे, छिटकता उजाला था
 बना स्वर्ण से था, हीरकों से जड़ा हुआ वह,
 स्वर्ण-कलशों से दीप्त, दीख रहा आला था
 सजा झालरों से, स्वर्ण-घंटों से सजीला बना,
 वैभव का रंग ढंग, निज को सँभाला था

सखियों-सहित सर में, नहा के जानकी ने,
 गमन किया है, गिरिजा के पुण्य धाम में
 आँखों की पुतलियों में, नाचती थी भक्ति, नील—
 फूल-माल हाथों में, रमा था मन राम में
 डूबी भक्ति-भावना में, जगा अनुराग बाग,
 मन भूल के भी नहीं, जाता और काम में
 रोम रोम में रमा था, वही अभिराम राम,
 वही मुसका रहा था, लोचन ललाम में



सुन्दर सुभग, अर्चना की विधि पूरी हुई,
 मन में प्रहर्ष हर्ष, का जगा उजाला था
 मन अनुकूल वर, माँग कर मुग्ध मन,
 मुग्धता की लेखा का, 'प्रकाश' ही निराला था
 खिंच रहे मानस-पटल पै, चलित चित्र,
 भक्ति-भाव का सु फूल, बना गुललाला था
 गौरी का था मंदिर, मुदित ममता से भरा,
 उसने मनों का, योग-यज्ञ ही सँभाला था

एक सखी सिया का, सु संग छोड़ के गयी थी,
 देखने के लिए, फुलवारी का सजीलापन
 वहाँ राम-लखन को, देखा फूल चुन चुन,
 रखते सु दोनों में था, छलका छबीलापन
 प्रेम-वश सीता के, समीप झट आयी वह,
 भरे थे नयन, तन में था पुलकीलापन
 सखियाँ चकित, सीता के सहित थीं सभी ही,
 राग-रंग का, समागता में था फबीलापन



देख ढंग उसका, विनम्र सखियों ने कहा—

इतनी प्रसन्नता का, कारण बताओ तुम
पुलक पुलक अंग, क्यों हुए कदंब सखि !

मन को हमारे यों, अधीर न बनाओ तुम
छलक उठे हैं लोचनों में, छिपे नीर सत्य—

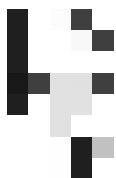
बात तो बताओ, अनुमान न कराओ तुम
प्राण को रहस्य-सूत्र-बंधन में बाँधे हुए,
आली री ! न अब और, व्यर्थ ही सताओ तुम

आली ! बाग देखने, कुँवर दो हैं आये आज,

वय है किशोर, सब भाँति से सुहाये हैं
श्याम, गौर रंग है न शोभा कुछ जाती कही,

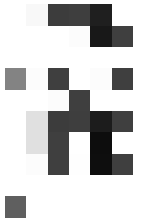
किस भाँति, कैसे कहें, जैसे मनभाये हैं
देखा लोचनों ने रूप, उनका अनोखा सखि !

किन्तु, विधि-द्वारा वे न, वाणी वर पाये हैं
वाणी कह सकती, मिले न पर नैन उसे,
कैसे कहें जैसे इन, आँखों में समाये हैं



जिस किसी ने भी, उन्हें देखा एक बार भी है,
 उसके न लोचन, कभी उन्हें भुलायेंगे
 रूपराशि उनकी, वसी है जिस उर-बीच,
 सुधि-पालने में वे न, और को झुलायेंगे
 योग-भोग जो भी सुख, समता में आयेंगे भी,
 तुलेंगे कभी न, उनको न वे तुलायेंगे
 एक बार उन्होंने की, बात जिससे भी भूल,
 सोते-जागते न, दूसरे को वे बुलायेंगे

जहाँ-तहाँ छवि का, बखान करते हैं लोग,
 देखने के योग्य हैं, अवश्य देख लीजिए
 जाने किस जन्म के, सु पुण्य से पधारे यहाँ,
 आये फिर कब योग, नैन-रस पीजिए
 जीवन में ऐसे छन, कभी कभी आते, अस्तु
 जीवन सफल अपना 'प्रकाश' कीजिए
 फूल से कुमारों के, मुखारविन्द देख आली !
 लोचनों का लाभ, लोचनों को अब दीजिए



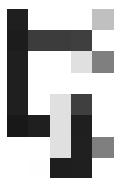
वैन उसके लगे, सभी ही सखियों को प्यारे
 किन्तु, सब से अधिक, सिया को सुहाये थे
 बात, प्रीति उनकी, पुरातन प्रतीति-भरी,
 उनके वचन, प्रतिबिम्ब-रूप लाये थे
 प्यारे दर्शनों के लिए, लोचन ललक उठे,
 व्यग्र बन बन के, वे जैसे अकुलाये थे
 आगे कर उसे पीछे 'सिया' चली स्नेह-साथ,
 मानो पथ-दर्शन के, प्यारे बिम्ब पाये थे

२०

याद आयी नारद की, बात जैसे मन-बीच,
 उपजी प्रतीति-प्रीति-रीति उजियाली-सी
 और कितनों के लिए, कही हुई बातों की भी,
 सुधि में सचाई नाची, प्याली सुधा ढाली-सी
 होकर प्रसन्नमना, मन में नमन किया,
 रोम रोम से उठी, पुलक की प्रभाली-सी
 घूम गयीं आँखें हो, चकित मुग्ध देख, पायी—
 कंज कलियों की रश्मि, बाल अंशुमाली-सी

२६]

[धनुष-यज्ञ, पुष्प-चयन



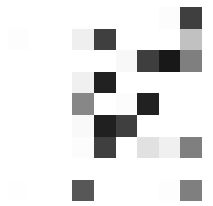
अंतर्दर्शन

१

कर्ण-कुहरों में ध्वनि-माधुरी पड़ी ही जैसे,
ध्यान राम का उधर, तुरत चला गया
देखा सखियों-सहित, सीता चली आ रही हैं,
स्नेह-दीप कोई, मन-गेह में जला गया
परम कठोर व्रत, में बँधा था पूत मन—
पाहन को, मालकोस, पल में गला गया
धाता धरती का, धरती पै आके स्वयमेव,
अपनी ही शक्ति-द्वारा, आप ही छला गया

२

आँखें पी रही थीं, रूप-सुधा छिन छिन आज,
छका रूपराशि में, सु मन रस पाता था
ज्ञान गया जाने कहाँ, मानस लहर गया,
मन प्रेम का पुनीत, प्रीत पद गाता था
रूप-माधुरी का मकरंद, मधु पान कर—
बना मधुपायी, मधुकन छलकाता था
बात मन की न मन-बीच, रह पा रही थी,
उसको निकालने को, वह अकुलाता था



सब तक शिंजिनी की, धुन फिर कानों-बीच,
 गुँज उठी, मन प्रेम में ज्यों पगा जाता था
 आ रहे विचारों के, चलित दोल, उनके जो
 उसमें से कितनों का, रंग जगा जाता था
 यौवन की कुंज गलियों में, मधुमास नया,
 नया प्रेम-पादप, पुनीत लगा जाता था
 रस-राग भरे भाव, आ रहे थे मन-बीच,
 तरल तरंग में, विवेक रँगा जाता था

देखते थे लखन, है मन राम का न यहाँ,
 वे हैं कुछ सोचते-समझते ज्यों बात हैं
 घूमी दृष्टि राम की, लखन दृग की जो ओर—
 पढ़े, मन के जो उठे, घात-प्रतिघात हैं
 बोले राम—लखन ! न कंकण, न किंकिणी हैं,
 दुंदुभी मदन ने दी, मोहे स्वर सात हैं
 जान पड़ता है, विश्व के विमोहने के लिए,
 गुँजे मधु, मन्द्र स्वर, जागे जलजात हैं

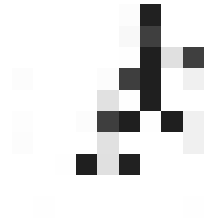


ऐसा कह फिर 'चितये' उसी ही ओर प्रभु,
 सिया-मुख शशि के, बने चकोर नैन हैं
 अपलक लोचन, पलों में हो गये 'प्रकाश'
 मुख से न राग-वश फूट रहे बैन हैं
 ज्वज फहरा रहा है, दुर्ग पर इस भाँति,
 डट गया मानो ले, पताके मंजु मैन है
 मन में छिड़ा है प्रश्न, उत्तर अनोखा और,
 नैन मूक-मौन होके, दे रहे-से सैन हैं

प्रकृतिस्थ होके राम, ने कहा—सुनो, ओ तात !
 यह मिथिलेश नन्दिनी, वही पुनीता है
 जिसके लिए धनुष-यज्ञ, का विधान बना,
 यह वही संस्कृति-सरस्वती की गीता है
 शक्ति की प्रतीक, भव्य भक्ति की प्रतीक यह,
 नियम की लीक से, हुई न कभी भीता है
 जनक चला रहे थे हल, नोंक लगते ही,
 प्रकटी धरा से यह, वही यह सीता है

1

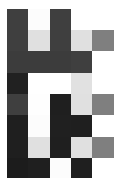
2

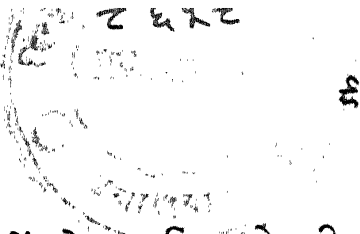


सखियाँ थीं लायीं, गौरी-पूजन के हेतु यहाँ,
 हो रहा 'प्रकाश' जैसे, फूली फुलवारी है
 शोभा है सहज, दिव्य दीप्ति दिव्यता की चारु,
 ऐसी कहीं देखी-सुनी, गयी न कुमारी है
 इसकी निसर्गदत्त, सुषमा सलोनी तात !
 मेरे मन-रवि की, उषा ही अरुणारी है
 फड़क रहा है शुभ अंग, मानो मेरे हेतु,
 इसकी सु रूपराशि, विधि ने सँवारी है

८

बातें करते अनुज से थे, प्रेम-साथ, किन्तु—
 मन में 'सिया' का, रूप-रंग ही सुहाना था
 आँखें कभी यहाँ, कभी वहाँ देखती थीं किन्तु,
 मन का विचित्र हाल, राग-रंग साना था
 भ्रमर बना-सा मन, भाँवरी-सा दे रहा था,
 मुख मकरंद-छवि, क्योंकि उसे पाना था
 सहज पुनीत, मन में था द्वन्द्व लक्ष्य लिये,
 और उसे कहीं भूल, आना था न जाना था

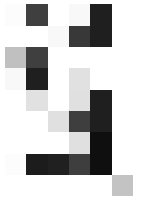




चारों ओर चकित हो, सीता देखती थीं वहाँ,
नृप के किशोर वे, कहाँ भला चले गये
आँखें घूम घूम हारीं, कहीं न दिखायी पड़े,
प्यारा प्रेम-पाहन, कहाँ गला चले गये
श्वेत कमलों की, पाँखुरी बिछाती सोचती थी,
दिखलाके अपनी, कहाँ कला चले गये
दरस दिखा के प्राण, कुंज के खिला के फूल,
रख उर-देश में यों, चपला चले गये

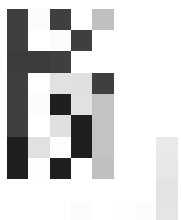
१०

सखियों ने सिर को, झुका के लता-ओट से ज्यों,
इंगितों ही इंगितों, दिखाया अनुराग से
त्यों ही देखा मैथिली ने, श्याम-गौर दोनों खड़े,
फूल चुनते हुए, रहे हैं रस-पाग से
देख रूप लोचन, ललच गये छवि-निधि,
बड़े पहचान के, खिले हैं बड़े राग से
अधिक सनेह देह, भोरी है, चकोरी बनी
व्योम में विलोक पूर्ण, चंद्र बड़े भाग से



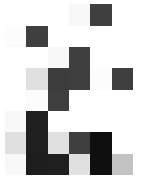
लोचनों की राह से, उरस्थली में उन्हें रख,
 पलक-कपाट दे, सयानी स्नेह-सानी है
 जाना सखियों ने 'सिया' स्नेह-मेह-डूबी हुई—
 कह सकती न कुछ, मन सकुचानी है
 दोनों भाई, उसी काल, निकले लता-गृह से,
 जलद-पटल, विलगा के शशि मानी है
 जान पड़ता था छवि, ही उतर आयी बँधे
 बंधन में राजा राम, सीता महारानी है

परम उदार, सुकुमार थे कुमार दोनों
 नील-पीत जलज, समान गात्र प्यारा था
 सिर पर 'काक-पक्ष' शोभा दे रहा था चारु,
 कुसुम-कली का गुच्छ, गुंथा बीच न्यारा था
 भवें टेढ़ी, केश कजरारे घुँघराले चारु,
 रतनारे लोचनों का, रंग अनियारा था
 उर-देश मणिमाल, से सजीला था 'प्रकाश'
 कम्बु-सा कलित कंठ, विधि ने सँवारा था



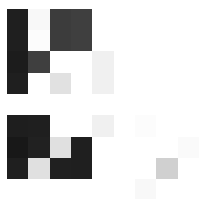
रूप कुसुमायुध को, मात करता था नित्य,
 ढंग कुसुमाकर से, भी खरा निराला था
 छवि लोटती थी, वशवर्तिनी बनी-सी चेरी,
 कमल-पदों में, उसका निवास आला था
 सरल विचार भाव, का था कहना ही क्या यों,
 प्रकृति पै लोटता, कुसुम-कुंज थाला था
 देख भानुकुल के, सु भूषण को आलियों ने—
 मानस में उनको, बना के हंस पाला था

धीर धर सुभग, सयानी सीता का पकड़—
 हाथ, बड़ी नम्रता से बोली—ये पतीजिए
 ध्यान गौरि का, सजनि ! फिर कर लेना कभी
 भूप के किशोर सामने हैं, देख लीजिए
 सकुच 'सिया' ने नैन जैसे ही उवारे, देखे
 सामने हैं दोनों रघुसिंह, रस पीजिए
 आलियों की मंडली, मुदित मन बोल रही—
 जीवन सजनि का, हमारे धन्य कीजिए



रूप-रंग-ढंग राम का, अनूप देख 'सिया'
 मन में मुदित, प्रेम-नेम रंग राती थीं
 जीवन-प्रभात में, खिला था कुवलय कल,
 निर्निमेष देखती थीं, बलि बलि जाती थीं
 किन्तु राग-बीच था, पिता का प्रण विघ्न बना,
 इससे सफलता में, प्रश्न चिह्न पाती थीं
 कैसा है कठोर यह, सोच के पिता का प्रण,
 उसके सुचित्त में, घटाएँ घिरी आती थीं

देखा सखियों ने, मन परवशता में पड़ा,
 ढंग से ही बात, सखियों ने रखी प्यारी है
 एक ने कहा, इशारे से ही लौटने की बात,
 एक ने इशारे से ही, दी बरज न्यारी है
 यों इशारे की ही 'सैनावैनी' में हुआ विलंब—
 सबने सभीत हो, कहा—विलंब भारी है
 एक आली ने विहँस, कहा इसी विरियाँ में
 कल फिर आयेंगी ये, विनय हमारी है



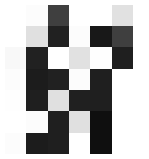
बात सुन आली की, 'प्रकाश' गूढ़ मर्म वाली,
 सीता डरीं, लोचनों में छा गया अँधेरा है
 जान गयीं बात, सखियों की वह सारी ओर,
 क्षण में सँकोच का, घिरा विनिव्र डरा है
 पूछेगी जननि देर कहाँ, कैसे हुई बेटी ?
 तब क्या बताऊँगी, विपाद घिरा घरा है
 नाचते दृश्यों में राम, एक ओर, और एक —
 ओर, चिन्ता-जलधि का, सूझता न बेरा है

देख छविराशि को, थके 'प्रकाश' नैन प्यारे,
 और छवि विश्व की, निरख क्षीण तोड़ी है
 चाहते हैं लोचन, उन्हीं को बस देखना ही,
 शिशुओं ने प्रेम-तंतुओं से प्रीति जोड़ी है
 करते सँकोच, एकटक देखने में शिशु,
 इसलिए देखने की, पद्धति ही मोड़ी है
 तरु, लता, विहँग औ' मृग देखने के मिस —
 बार बार आते लौटते, न प्रीति थोड़ी है



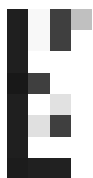
प्रेम-डूबे उर में, उन्हीं की याद को सँजोये,
 'सिया' फिर चलीं, गिरिजा-भवन पल में
 रोम रोम हो रहे, शैवाल-गुल्म प्रेम-वश,
 छलक रहे थे नैन, पानिप के जल में
 भाव मन के दबाये, वंदना विविध कर,
 भूल अपने को वह, बोली पुण्य-थल में
 आ रहे थे उमड़, उमड़ कर भक्ति-साथ—
 भावना के कुसुम, सजीले झलमल में

बेटी ऐसे बाप की हो, जिसने दिया है त्राण,
 देवता जनों पै दुःख, का है जब घिरा घन
 दानवों का सहज, विनाश करके सहास,
 जिसने भलों को है, दिया सदैव कीर्ति-धन
 गंगा जैसी बेटी, जिसकी त्रितापहारिणी है,
 उसी की हो बेटी, यह मान रहा त्रिभुवन
 गौरव तुम्हारा, देवि ! व्याप्त अग-जग में है,
 आशिष से तेरे, कितनों का पुलकित मन



करपूर गौर शिव, की प्रिया सलोनी तुम,
 उनके विमल मुखचन्द्र, की चकोरी हो
 जननी गणेश की, षडानन की माता तुम,
 सुषमा विभूति की, लिये न तुम थोरी हो
 अवसान, आदि, मध्य, कुछ न तुम्हारा देवि !
 जानता प्रभाव वेद, भी न किन्तु भोरी हो
 भावुकों पै दया, दया की अनन्त धार लिये,
 भक्तों के लिए करो में, लिये त्राण-डोरी हो

पूजा कर चरण, सरोरुहों की तेरे देवि !
 सुर, नर, नाग, मुनि, सुखी सब होते हैं
 आशिष तुम्हारा पाके, कौन है सुखी न हुआ,
 तेरी करुणा के भाव, नित्य बीज बोते हैं
 दुष्ट, खल जन, शठ, अपनी कुभावना को,
 तेरे मंद हास से, पलों में देवि ! खोते हैं
 तेरे ही सहारे विधि, सृष्टि करते हैं, रुद्र—
 करते सँहार विष्णु, पालन सँजोते हैं



घट घट वासिनी हो, जननि ! 'प्रकाश' तुम,
 तुम से छिपा न कुछ, सब जानती हो तुम
 मेरा जो मनोरथ, उसे भी जानती हो 'सीते'
 उर-पुर में बसी, सनेह ठानती हो तुम
 हो गयी परम भाव-मुग्ध, यों 'सिया' प्रकाश,
 चरणों में गिरी, बोली—मुझे मानती हो तुम
 जननी ! हमारी, भावना के फूल अर्पित हैं,
 देवि ! सब भाँति, क्षेम-क्षत्र तानती हो तुम

हँसी मन-मंदिर की, 'मूरति' सलोनी वह,
 गिरिराजनंदिनी-अधर मुसकाया है
 नाच गया चित्र जब, तप में थीं लीन हुई,
 नारद का वचन, सु ध्यान-बीच आया है
 बोलीं—सदा सत्य, ऋषि नारद वचन प्यारा,
 मिलेगा सु वर, साँवरा जो मनभाया है
 पुलक 'सिया' ने, सिर पै प्रसाद रखा प्यारा,
 मन में प्रमोद-मेघ, नया रंग लाया है



उर से सराहते, 'सिया' की सुघराई, राई—
 राई, अंग अंग की, अनोखी मनभाई जो
 गुरु के समीप आ गये, यही प्रसंग लिये,
 आँखों में बसी हँसी, लसी-सी है निकाई जो
 सुन्दर सुमन पाके, पूजा मुनि ने की प्यारी,
 आशिष दी, दोनों भाइयों को सुखदाई जो
 पुलक कदंब-कुल की है, हर्षाई आयी,
 बहुत दिनों से, गुरु-मन में समाई जो

सरल स्वभाव, राम का था लोक-अभिराम,
 छू गया कभी न, छल-स्वप्न का भी पानी है
 बातें पुष्प-वाटिका की, अथ से सु इति वाली,
 पूरी बतलायी, रखी शेष न कहानी है
 सुन मुनि-मानस में, लहर उठी है न्यारी,
 होवें प्रिय सफल मनोरथ, ये बानी है
 राम औ लखन, गुरु-आशिष से झूम गये,
 मिल गया उन्हें, क्योंकि स्वर वरदानी है



धनुष-यज्ञ

१

मुनि-संग दोनों ही, कुमार चले देखने को,
सुन्दर धनुष-यज्ञ, जो गया प्रचारा है
रंगभूमि में पधारे, दोनों भाई एक साथ,
सुन पुरवासियों का, खिला नैन-तारा है
सहज, सरल स्नेह-साथ पुरवासियों के—
उमड़ा उरों का मंजु, मानसर न्यारा है
निधि लोचनों की, लूटते थे भाग्यशाली बन,
दीख रहा उनको, स्वयं का ध्रुवतारा है

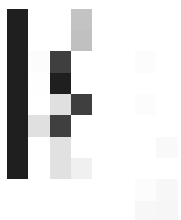
२

रूप राम का अनोखा, सुघर सुहावना था,
रंग नील नीरद, समान सजा प्यारा था
लोचन खिले कमल, जैसे मनोमोहक थे,
'चितवन' का सु स्नेह, रंग-ढंग न्यारा था
पीतपट बाँधे, कटि-तट में तूणीर शर
कर में, धनुष वाम, कंध भव्य धारा था
झलक रही थी आभा, सहज 'प्रकाश' चारु,
रूप कुसुमाकर का, ज्यों गया सँवारा था



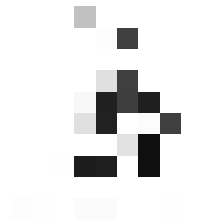
जैसी भावना थी जिसकी, उसी के अनुरूप,
 देखा उसने स्वरूप, राम का निराला है
 देखा पंडितों ने, उनका विराट रूप न्यारा,
 देख कर, शीश, पद विपुल सु आला है
 देखा भावुकों ने, भगवान अपना है आया,
 देखा 'सिया' ने सु स्नेह, उनका सँभाला है
 जनक की जाति के, विलोकते थे प्यारे-न्यारे,
 सजन सगे-से, उन पै सनेह ढाला है

देखा वैरियों ने काल, रूप में ही उन्हें उग्र,
 सहज सनेहियों ने, स्नेह-रूप पाया है
 जैसा जिसका था भाव, उसी रूप में ही देखा,
 रूप राम का दृगों में, वैसा लहराया है
 बड़ा ही विचित्र, समारोह था अनोखा प्यारा,
 सब के मनो में, अपना ही बिम्ब आया है
 सभी थे चकित, राम-रूप था अनोखा ऐसा,
 मर्म जान पाया, जिसने उन्हें बसाया है



अवसर जान के, जनक ने 'प्रकाश' गण,
 भेज कर सीता को, सनेह से बुलाया है
 चतुर सखी थीं, सब सुन्दर सकल साज—
 के ही साथ लायीं, जन-मन हरषाया है
 सुषमा अनोखी कह, पायेगा कहो भी कौन ?
 भाई, किसी भाँति सृष्टि में न दिख पाया है
 तो भी कहने की है, परम्परा चली ही आयी,
 इसलिए, मन में विचार यह आया है

जान पड़ता है, विधि ने समेट विश्व की ज्यों,
 सारी सुषमा की राशि, एकठा सजायी है
 भाँति भाँति के मनोज्ञ, सुमनों की छवि प्यारी,
 तड़ित की ज्योति, सु प्रभा की ले निकायी है
 सार सबका ही लेके, विधि ने चतुरता से,
 समय निकाल कर, ज्यों कला दिखायी है
 परिणाम उसी का है, सीता महारानी बनीं,
 उनकी सु छवि, निरुपम गयी पायी है



आता मन में है, कुसुमाकर की छविराशि—

से करूँ मैं समता, परन्तु वह हारी है
उसमें अनेक प्रश्न, चिह्न जगते हैं, किन्तु

यहाँ पर समाधान, की ही प्रथा प्यारी है
आता मन में है, कुसुमायुध की रानी से ही,

करूँ मैं बराबरी, पै उसे दुःख भारी है
करूँ क्यों सरस्वती की, रूप-तुलना मैं भला,

वह तो मुखरता से, ही गयी सँवारी है

८

पार्वती बड़ी ही हैं अनोखी, रूप-रंग वाली,

किन्तु अर्द्धांगिनी-प्रथा से वे भी हारी हैं
क्षीर-सिन्धु कन्यका, अवश्य किसी भाँति, किन्तु

बंधु है गरल, वारुणी बहन प्यारी है
दामिनी की दमक, निराली छविशाली किन्तु,

छवि पै यहाँ के विधि, सृष्टि बलिहारी है
रूप है अतुल, अभिनंदनीय सीता का यों,

वैसी छवि सृष्टि में, गयी कहाँ सँवारी है



आयी रंगभूमि में, सिया ज्यों सखियों के संग,
 लगा, रूपराशि की, उजागरी ही आ गयी
 देख रूप-रंग मन, सबका प्रसन्न हुआ,
 लोचनों में सबके, कोजागरी ही आ गयी
 सारी रम्यता की ऋद्धि, सारी सर्जना की सिद्धि —
 का निचोड़ लेकर, सु नागरी ही आ गयी
 पूरी विधि-साधना की, राधना की ज्योतिमयी,
 फेंकती प्रकाश-सी, गुणागरी ही आ गयी

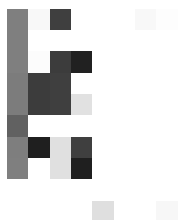
१०

सभी देख सीता, और राम को सराहते थे,
 उनके अनूप रूप-रंग मन भाते थे
 कोई कहता कि नृप, बुद्धि फेर देता विधि,
 हर जड़ता को, ऐसे राग-रंग-राते थे
 कोई कहता था, नृप होवें यों प्रभावित कि
 प्रन तज देवें, यही देवों से मनाते थे
 कोई कहता था वर, साँवरा सलोना यह,
 जानकी के योग्य, कह कह गुन गाते थे



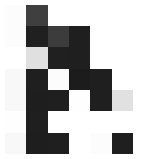
कोई कहती थी, फल उचित विधाता देता,
 उसके विधान में, कहीं न चूक-आरा है
 ऐसा है तो सीता को, मिलेगा वर आली, यह
 फरक न तिल भर, भाव ये हमारा है
 विधि-वश ऐसा जो, सँयोग होगा, हम सब—
 होंगी भाग्यशालिनी, बता रहा सितारा है
 जिस विधि ने 'सिया' को, रच के सँवारा उसी—
 ने ही श्याम वर को, विचार के सँवारा है

चीर वायु-मंडल को, तब तक बोले, खड़े—
 बंदीजन हर्ष से, सुनो हे सारे महिपाल
 राजा मिथिला के ये, अवनि के हैं सिरताज,
 हम जतलाते उठा, बाहें ये सुनो विशाल
 प्रण है विदेह का, धनुष जो भी तोड़ देगा,
 उसी के गले में, पड़ेगा 'सिया' का जयमाल
 नृप-भुज-बल विधु, शिव-धनु राहु-जैसा,
 बड़ा है गँभीर, कोई सका जिसको न टाल



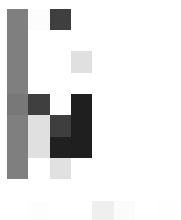
विदित है लोक में, स शोक कितने हैं हुए,
 साहस का कितनों के, निकल जनाजा है
 कितना भयंकर, 'प्रकाश' शिव शंकर का---
 धनुष जगा गया, जगत बजा बाजा है
 बाण और रावण, गये हैं हार मान मान,
 कौन-सी बिसात में, धरा का अन्य राजा है
 जिस वीर के करों से, जायेगा 'पिनाक' टूट,
 सीता को विरंचि ने उसी के लिए साजा है

वह त्रिभुवनजयी, होगा ही वसुंधरा में,
 उसकी कलित कीर्ति, होगी बड़ी प्यारी ही
 ताप दूर होगा यों, त्रिताप दूर होगा सब,
 उसकी विशेषताएँ, होंगी मनहारी ही
 आज राजमंडल में, जो समाज-बीच, पूरा—
 करेगा सु यज्ञ, उसकी जयति न्यारी ही
 बिना ही विचार किये, 'सिया' उसे वरेगी ही
 जायेगी विवाह की, परंपरा सँवारी ही



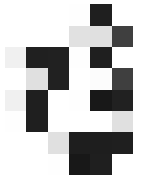
लहर उठी-सी सभा-सिन्धु में अनोखी तब,
 एक एक वीर निज, शक्ति तोलने लगे
 आते बड़े वेग से, उठाते, उठता न जब,
 तब लजा लजा उर, रीता खोलने लगे
 आकर लगाते सारा, संचित पराक्रम तो,
 टलता न तिल भर, मौन बोलने लगे
 हार कितने ही, चुपचाप मनमार चले,
 हार हार कितने, वहाँ से डोलने लगे

देख के दशा जनक, व्यग्र हो गये विचिन्त,
 जाने कैसे मन में, विचार उठने लगे
 घिरी आशा-कली पै, तुषार गिरने-सा लगा,
 लोचनों के आगे, तम-तार उठने लगे
 रोक अपने को न, सके व्यथा से भरे नृप,
 तन में तरल ज्यों, अँगार उठने लगे
 बार बार धैर्य मन, को वे देने लगे, किन्तु—
 प्राण सिन्धु में उदग्र, ज्वार उठने लगे



रोक न सके नृपति, ऐसा कुछ बढ़ा क्लेश,
 स्वरो में छिपा छिपा-सा, अतुल कराह है
 बोले खिन्न मन से, विषण्ण हो विपुल वह,
 आशा तजो यहाँ की, चलो खुली-सी राह है
 प्रण है कठोर, मैंने जाना स्वप्न में न ऐसा,
 वीर ही न हैं, वसुन्धरा की मिली थाह है
 बुरा माने कोई भी न, झट मुझे क्षमा करें,
 मेरी 'सिया' का न लिखा, विधि ने विवाह है

ऐसा जानता तो मैं न, भूल के कभी भी प्रण,
 करके 'प्रकाश' बनता यों उपहास-पात्र
 व्यापी चिन्ता मन में है, रत्नानि का हुआ है राज्य,
 दहक रहा है, रह रह कर पूरा गात्र
 इतना विशाल विश्व, एक भी न वीर ऐसा,
 घिरता है विषम, विषाद तम-तोम रात्र
 करम का फल यह, है अदृष्ट का ही दोष,
 और क्या कहूँ मैं, मानता हूँ यही एक मात्र



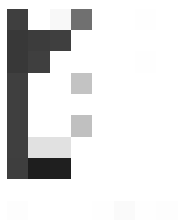
बदला हुआ था ढंग, बदला हुआ था रंग,
 मनो में सभी के, घूम रही ज्यों उदासी थी
 कह पाना कठिन, सुनैना नयनों की बात,
 घिरी उसकी पुतलियों में ज्यों अमा-सी थी
 पीरा उभरी थी, भरी थी न जाने बातें कैसी,
 कितनी कहाँ की कैसी, आ गयी तमा-सी थी
 डूबती व्यथा में, कहना ही चाहती है कुछ,
 लोचनों में नाचती, उभरती क्षमा-सी थी

२०

जब न सँभल पायीं, बोलीं तब सखियों से,
 जो बने हितैषी, वे तमाशबीन सारे हैं
 कोई न सुझाव देने, वाला मिथिलेश को है—
 वही करें, जिसमें सुखों के घन न्यारे हैं
 जीवन में दिल न, दुखाया कभी किसी का भी,
 मेरे लिए दीन भी, रहे ही दृगतारे हैं
 हो रहा है फिर, प्रतिकूल क्यों बताओ सखि !
 काँपता कलेजा, दुखी, नाथ भी हमारे हैं

५०]

[धनुष-यज्ञ, धनुष-यज्ञ

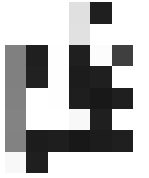


1



सुना सखियों ने, बोली एक सखी स्नेह-साथ,
 रानी घबराओ नहीं, होगी बात चाही सब
 रावण गया है हार, बाणासुर भी गया है,
 और कितने सुभट, की न हुई चाही अब
 क्या हुआ है इससे, न कुछ घबराओ सखि !
 तेजवंतों ने किया, नहीं है कहो, क्या क्या कब
 कहाँ सिन्धु, कहाँ सिन्धु पायी हैं अगस्त्य ऋषि,
 विन्ध्याचल कहाँ ? काम पूरा हुआ आया जब

कहाँ गजराज मतवाला, कहाँ अंकुश है,
 कहाँ सुर नर मुनि, कहाँ मंत्र न्यारा है
 कहाँ कुसुमायुध कुसुम-धनु-बान वाला,
 कहाँ है सकल जग, हुआ वश प्यारा है
 कहाँ तम-तोम, कहाँ, रवि शशि बोलो सखि !
 कहाँ सिन्धु-नीर, वाडवाग्नि की सुधारा है
 कहाँ है विशाल वट, कहाँ बीज छोटा किन्तु
 उसमें ही छिपा, इतिहास मनियारा है



... ..

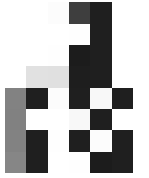
रानी चिन्ता तनिक न, भूल कर करो तुम,
 बड़ा बड़ा काम, इन्होंने ही कर डाला है
 जाने कब से पड़ी थी, शिला रूप में अहल्या,
 पलों में बनायी, इन्होंने ही ऋषि-बाला है
 बात हैं बताते लोग, समाचार-पत्र भी हैं,
 ऋषियों को दैत्यों से, इन्होंने ही सँभाला है
 एक बाण में ही, ताडका को सुरधाम भेजा,
 जा गिरा मारीच दूर, जब पड़ा पाला है

मेरा मन कहता है, कहते हैं लोग और—
 इनमें असीम शक्ति का भरा खजाना है
 कितने ही राक्षसों का वध कर, ऋषि-यज्ञ—
 पूरा किया इन्होंने, सभी ने यह माना है
 माना यह फूल जैसे, कोमल सही हैं तो भी,
 कितना कठोर सही, भी रहा निशाना है
 शिव-धनु तोड़े बिना, रहेंगे कभी न यह,
 कुछ ही क्षणों में यह, मर्म खुल जाना है



बात यह रानी को, सुहायी मनभायी और,
 देवी-देवताओं को, मनाने लगीं मन से
 चाहते सभी थे, सियाराम की ये जोड़ी बने,
 अपनेपने से वे, मनाते उसी छन से
 पूरा स्नेह-सागर, उमड़ रहा सीता का था,
 सिरस-सुमन बेधे, हीरा कैसे कन से
 भाँति भाँति से वे, भगवान को मना रही थीं,
 याद उन्हीं को, दिला रही थीं प्रेम-पन से

बातें सुन जनक की, दहक उठा था उर,
 हो गये खड़े लखन, बोले क्रुद्ध मन से
 आया मन में जो कुछ, कहा मिथिलेश ने है,
 परिचय ही न, रघुवंशियों के प्रन से
 क्या धनुष में धरा है, यदि मुझे आज्ञा मिले,
 गुरुदेव और पूज्य, अग्रज-चरन से
 खंड खंड कर इसे, भेज दूँ तलातल में,
 अन्यथा स्वनाम ही मैं, छोड़ूँ उसी छन से

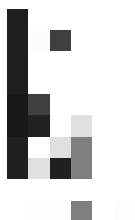


वाणी सुन लखन की, दिग्गज दहल गये,
 काँपने लगी धरा, नगेन्द्र डोलने लगे
 लहर उठा समुद्र, उग्र गर्जना के साथ,
 ज्वार के पटल मर्म-कोश खोलने लगे
 काँप गये कितने, महीप मतवाले व्यग्र,
 इंगितों में मन के, विकल्प तोलने लगे
 हो गया गँभीर, वायु-मंडल परम शांत,
 मंद मंद तब, गुरुदेव बोलने लगे

धनुष-भंग

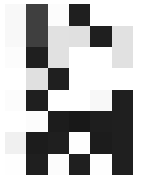
१

दुखी हैं जनक, उठो राम ! भव-धनु तोड़,
 दुख दूर करो, घिरी देख लो उदासी है
 फूल-सा खिला था मुख, जनक सगोतियों का,
 दूर हुई उनकी, निराशा अब हाँसी है
 बात गुरु-मुख की, जो गूँजी जन-मंडली में,
 हर्ष की लहर उठी, प्रिय पूर्णिमा-सी है
 सीता की सु उर-कंज कलिका खिली है प्यारी,
 शुभ्र ज्योति छा गयी, तुरंत अविनाशी है



उठे राम सहज, गँभीर अनासक्त जैसे,
 गुरु के चरण छू के चले, शत्रु-धक में
 बड़ी ही सहजता के, साथ हाथ में लिया ज्यों,
 कौंधी बिजली-सी छवि, लोग गये धक में
 कब हाथ में लिया है, खींचा कब किसी ने भी—
 देखा नहीं, खड़े के खड़े ही रहे चक से
 उसी बीच राम ने, धनुष तोड़ा, लोक सारा
 गूँजा घोर ख लोग, रह गये ठक से

भुवन कठोर घोष से भरा, धरा हिली ओ.
 चीतकार दिग्गजों ने, किया दर करके
 हो गया चकित अश्व, रवि का अचानक ही.
 मलिन मृगांक लगा, मृग मग घरके
 उगल स्फुलिंग रहे, शेष के सहस्र फण
 उस क्षण, कोल और कुर्म भय करके
 ऋषि-मुनि सुरासुर, विकल विचार कर—
 बोले—राम ने धनुष, तोड़ा दुःख हरके



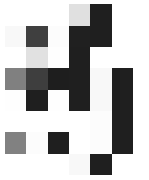
खंड दो धनुष कर, राम ने धरा में फेंका,
 सबके मनो नें दुख, की लहर आयी है
 राम की सु छवि, वीरता को वीरता को देख,
 कौशिक के तन-मन, में पुलक छाया है
 वजे व्योम-मंडल में, विपुल नगाड़े धौंसे,
 देव-बधुओं ने नाच, अपनी दिखायी है
 छा गया उछाह नभ-मंडल में प्यारा प्यारा,
 आशिषा सुरों ने, सुमनों में बरसायी है

लोक में भरा है जय, जयकार जहाँ सुनो,
 मनो का समुद्र हर्ष, पाके लहराया है
 होकर प्रसन्न नर-नारी कहते 'प्रकाश'
 शंभु-धनु तोड़ राम-हर्ष उफनाया है
 आनंद का छाया ऐसा सुखद सुराज प्यारा,
 वाणी में किसी भी भाँति, जो नहीं समाया है
 फूले फूले फूल से, सभी तो दिखला रहे हैं,
 सबके स्वरो में, नया-सा उछाह आया है



वंदी, सूत, मागध, विरुद गा रहे हैं मुग्ध.
 मति धीर वे हैं, मति धीरता दिखाते हैं
 वीरता सराहनीय, धीरता, गंभीरता की,
 राम की बड़ाई का, सु गान भी सिखाते हैं
 कोई हर्ष में किसी को, हाथी-दान दे रहा है,
 कोई अश्वदान पुण्य, फल ही लिखाते हैं
 कोई दीन जनों को, लुटाते हैं असूख्य धन.
 कोई हार कंठ का, निकाल पहनाते हैं

छाया था हुलास कहीं, वज्रता था जाँझ कहीं,
 कहीं पै मृदंग तो, कहीं पै गहनाई है
 कहीं पर भेरी, ढोल, दुंदुभी कहीं पै बजे,
 कहीं और वाद्य, मंगलों की छवि छाय है
 गाती थीं युवतियाँ, सु मंगल के गीत कहीं,
 उनकी विमल वाणी, रस-भरी आँखें है
 देखते ही बनता था, यूथ यूथ गा रही थीं,
 स्वरो की तरंगें, उठती जो मन नार्ड है



रानी थीं प्रसन्न बड़ी, हुई मनचाही बात,
 सखियाँ समोद, बोल रही मृदु बानी हैं
 था उदास मन सबका जो, धनु टूटते ही—
 सूखते सु धान पै, पड़ा ज्यों शीघ्र पानी है
 जनक प्रसन्न हुए, चिन्ता छोड़ इसी भाँति,
 तिर तिर थका ज्यों, थहा तैराक मानी है
 धनु टूटने से भूप, श्रीहत हुए यों सब,
 होती दिन-दीप की ज्यों, करुण कहानी है

सीता का सहज सुख, जागा इस भाँति, जैसे—
 चातकी मुदित होती, पाके जल स्वाती हैं
 देखते लखन, राम को निहाल होके, ऐसे—
 देख चाँद को, चकोर की ज्यों बन आती है
 देखती सुनैना, राम को थीं नयनों से जैसे—
 भरी नाव डूबती, किसी की बच जाती है
 सजन सखा-सी, देखती हैं 'सिया'-सखी-गन
 जनक की जाँति, अपना सगा ही पाती है



शतानंद ने दी तब, आज्ञा स्नेह-साथ पूर्ण।
 सीता चलीं राम के, निकट स्नेह-साथ के
 संग संग सखियाँ, मल्लोनी चानुरी में दूरी।
 गातीं मधु मंगल, चलीं प्रमत्त मन के
 राजहंसिनी की चान, गुपमा अपार भरी
 राजती लजातीं, रति के गुजग मन के
 सखियों के बीच, जानकी थी छवि देती ऐसी।
 छवि-राशि-बीच, महाछवि ज्यों न धन के

कर कमलों में जयमाला, गाँधी थी चर
 विश्वजयी गाँगा, अनुमम छवि लक्ष्मी की
 तन से सँकोच, मन से उछाह प्यारा प्यारा
 प्रेम की गँभीरता, कभी न कुछ हावी थी
 जाकर समीप, राम-छवि देव धन्य हुई।
 चित्र लिखी जैसी वह, बनी रंग रागी की
 चतुर सखी ने, इंगितों में कहा, मेरी साखी
 पहिनाओ जयमाला, आँखें बनवाती थी



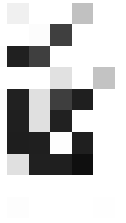
लाज लोचनों में नाचती थी, सखियों के बीच,
 कैसे पहनाऊँ माल, मन में थीं कहतीं
 माल हाथों में सँभाल, स्नेह-साथ लिये चारु,
 छवि -धाम को विलोकती थीं, सुख लहतीं
 भाव में थीं झूमती, मनातीं गिरिनंदिनी को,
 माला पहिनाते के, सुयोग में उलहतीं
 आलियाँ विलोकने में, वेसुध बनेंगी जब,
 तभी प्रभु-कंठ-माल, डालने को चहतीं

रंगभूमि राजती, निसर्ग-सुकुमारी सीय,
 कर माल वारी छवि, कुसुमाकरी की है
 कोटि कालजयी राम-राग अनुरागी हुई,
 शील की शलाका शुचि, सुषमा-दरी की है
 अंगुलीय-बिम्ब-थला, राम-रूप-सोम ढला,
 मंजरी पुलक उठी, कल्प बल्लरी की है
 राम के गले में, जयमाल डाले सीय-कर
 सिन्धु में उठी-सी उर्मि, वारि विज्जुरी की है



परम प्रसन्न हो गयी, सभी सहेलियाँ थीं,
 कब जयमाल 'सिया' ने गले में डाला है
 देख भी न पायीं, डालते समय भी हम सब,
 इसमें सनेह का, भरा हुआ उजाला है
 खड़े देव व्योम से, सुमन बरसाते चारु,
 कितने भुवालों का, हुआ ज्यों मुँह काला है
 बाजे बजते थे पुर, में 'प्रकाश' पुण्य-भरे
 खल थे मलिन, सज्जनों का रंग आला है

कितने ही ढंग से, सिखा के सखियों ने कहा---
 किन्तु, सीता ज्यों की त्यों, खड़ी ही रह जाती है
 कारगर होती नहीं, सीख सखियों की कुछ,
 जान कुछ पाती नहीं, भोरी ढह जाती है
 धनु-भंग-वेला में, विकलता बढ़ायी जैसे,
 बदला उसी का कुछ, आँखें बतलाती है
 थोड़ी देर करें प्राणाधार भी, प्रतीक्षा अब,
 देखें वेला धीरज की, कैसे ढह जाती है



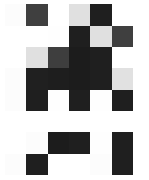
देव, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर, नाग
 नर, ऋषि-मुनियों का, मन गया खिल-सा
 जय जयकार कर, दे रहे आशीष सब,
 प्रभु-अवतार का, गया है फल मिल-सा
 विविध वधूटियाँ, विविध विधि नाच रहीं,
 गान से है उनके, मिला प्रभा का किल-सा
 बार बार छूट रही, फूलों की सु अंजलि है,
 मानो पुष्प-वेलि का, समूह गया हिल-सा

जहाँ-तहाँ विविध, द्विजों की वेद-ध्वनि होती,
 बंदीजन, विरुद बखान न अघाते हैं
 विपुल वसुंधरा, पताल स्वर्ग आदि में भी,
 कीर्ति यश के भले, पताके फहराते हैं
 मिथिलापुरी की, नारियाँ उतारती हैं चारु—
 आरती, पुरुष भी, प्रताप-गान गाते हैं
 गली गली में है गूँज, रहा राम का सुयश,
 सभी प्रेम से उन्हें, सु माल पहनाते हैं



छवि औ सिंगार एक, जगह हुए हैं जैसे,
 सीता और राम की, सराहनीय जोड़ी है
 आशिष के फूल नित्य, द्विज देवता हैं देते,
 आती नहीं नींद, भूल के कभी निगोड़ी है
 प्रेम-भरी सखियाँ, सिखातीं जानकी को प्रभु—
 के चरण गह, शेष बातें सभी भोड़ी हैं
 छूतीं न चरण सीता, भीता हो रही थीं वहाँ,
 मन में मची थी, उनके ज्यों होड़ा-होड़ी है

जनक लली के, मन में उठी अचानक जो,
 बात वह भीति-नीति, की घटा-सी लाई है
 मेरी ये अँगुलियाँ, अँगूठियों से लसी हुई,
 जड़-रतनों को यों ज्यों, पाके मुसकाई है
 रतन भले ये किन्तु, पाहन सही हैं—
 ऋषि-नारी के प्रसंग ने, दशा भली बताई है
 इन्हीं रतनों से सेना, नारियों की होगी खड़ी—
 चाहेंगी सभी ही उन्हें, यही कठिनाई है



लाख समझातीं, सखियाँ चरण छूने को जो—

किन्तु, उनके न मन में ये बात आती है
आता लोचनों में चित्र, 'गौतम तिया' का न्यारा,

मन काँप जाता, भावी शंका मँडराती है
कदम न चला है, नैतिकी के उल्लेख नीति,

समाधान की न कोई, नीति मिल पाती है

जान प्रीति मन, मन हँसे रघुवंश-मनि,

सीता-प्रीति गीता वन, मन विहँसाती है









१ जनवरी, १९५० को साहित्य-सदन, सेठवा, मालीपुर, फ़ैजाबाद (उ० प्र०) में श्री सत्यनारायण द्विवेदी 'श्रीश' के घर 'धनुष-यज्ञ' के कवि प्रकाश द्विवेदी का जन्म ।

सरल, सहज एवम् सहृदय होने के कारण भारत के प्रायः समस्त विद्वानों और कवियों के सान्निध्य में ।

गद्य एवम् पद्य की चलती समस्त विधाओं में साधिकार लेखन और प्रकाशन ।

१. अन्तर्गानि २. लोकाधार ३. अर्चना के देवता ४. सुधि के गीत ५. इन्द्रधनुष ६. आँसू के अक्षर ७. उद्धवदूत ८. सुलझा सोम : उलझी कौमुदी तथा ९. पारावार ब्रज कौं, काव्य-पुस्तकें प्रकाशित ।

बाबा बरूआदास इण्टरमीडिएट कॉलेज रसूलपुर, बाकरगंज, अमरतल, फ़ैजाबाद में अध्यापक ।

—तीर्थनाथ दुबे
नौपेड़वा, जौनपुर

1443

1